वैदिक साहित्य में ज्यामिति

Arpita Chattarjee

Department of Ancient Indian History, Culture & Archeology, Banaras Hindu University, Varanasi-5

Abstract

The term for geometry in India, in ancient times was Suiha the word being derived from Sulh' or 'Sulv" meaning to measure. Its knowledge has become available to us through the texts called 'Sulba-Sutras'.

Different 'Sulba-Sutras' were meant as texts for those who had to construct altars in different geometrical shapes in connection with the performance of a variety of Vedic Sacrifice. The size and shape of the altar for a particular Sacrifice must strictly follow the rules as even a little irregularity in it can nullify the object or have even adverse effect. Sulba-Sutras contain rules, regulations and methods for construction of these altars and give us a good glimpse of the knowledge of geometrical principles and procedures known to the Vedic Indians.

Knowledge of geometrical principles, contained in the Sulbas comes, from much older sources in fact from the time the sacrificial rituals started with the Aryans. There are innumerable references in the Rigveda about the construction of sacrificial altars, but there we do not find mention of their different sizes and shapes. Taittiriya Samhita states the size of an obligatory altar, as one square purisa and satapatha Brahmana describes Garhapatya, again an obligatory altar, as a circle of one square vyama or purusa and Ahavaniya as a square of the same size. This clearly indicates that Vedic Indians were familiar with the problem of squaring the circle. The Rigveda clearly mentions that there were experts available for construction of different altars and the name 'agnatic', a constructor of altars, is many times mentioned in Taittiriya Samhita, Maitrayaniya Samhita etc.

In ancient times there were many Sulba-Sutras, but presently only seven are known to us. These are Apastamba, Katyayana, Manava, Baudhayana, Maitrayaniya, Vadula and Varaha.

वैदिक यज्ञों के लिए वेदियों के निर्माण में रेखागणित के ज्ञान की आवश्यकता होती थी। कालान्तर में इस ज्ञान को शुल्बसूत्रों में उपनिबद्ध कर दिया गया। वस्तुतः शुल्बसूत्र वेदांग में परिगणित होने वाले कल्पसूत्र का महत्वपूर्ण अंग है। शुल्ब का अर्थ है रज्जु और रज्जु के द्वारा मापी गई यज्ञ वेदि का निर्माण ही शुल्ब सूत्र का प्रमुख विषय है। रस्सी की सहायता से तरह तरह की वेदि, अग्निचिति, मण्डप इत्यादि का विन्यास करने की रीतियाँ सूत्र रूप में जहाँ दी गई है, उसे शुल्बसूत्र कहते हैं।

अब तक आठ शुल्बसूत्रों के विषय में हमें ज्ञान है। कृष्ण यजुर्वेदान्तर्गत सात शुल्बसूत्र हैं: बौधायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ़, वाधुल, मैत्रायणी और वराह तथा शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत आठवाँ शुल्ब-सूत्र कात्यायन शुल्बसूत्र है। इन शुल्ब सूत्रों में बौधायन, मानव, आपस्तम्ब तथा कात्यायन शुल्बसूत्र प्रमुख हैं, जबकि अन्य शुल्बसूत्र कुछ भेद से इन शुल्बसूत्रों जैसे ही है।

इन शुल्बसूत्रों के प्रतिपाद्य विषय यज्ञ कार्य के लिए वेदि, अग्निचिति, आदि का माप, विन्यास की अनेक पद्धतियाँ, इनकी निर्मिति के लिए ईटों की रचना इत्यादि है। इनमें अंगुल, पुरुष आदि परिमाप, इनका परस्पर संबंध, वेदि, चिति, मण्डप के विन्यास के लिए साधन जैसे कि रस्सी, बाँस, खूटियां, भूमिति के सिद्धान्त, अनेक भूमितिक कृतियां, ईटों के आकार, संख्या, अग्निचिति निर्माण के नियम इत्यादि की जानकारी दी गई है।

अग्नि के तीन प्रकार गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि यहाँ वर्णित हैं। गार्हपत्य अग्नि वृत्ताकार बतायी गयी है। प्राग्वंश मण्डप के पश्चिमी द्वार के पास इसका स्थान बताया गया है। इसका क्षेत्रफल ५७९ वर्ग अंगुल होता है।[१] आहवनीय अग्नि वर्गाकार होती है और प्राग्वंश मण्डप के पूर्वी द्वार के पास इसका स्थान बताया गया है। वर्गाकार आहवनीय की सभी भुजा ९६ अंगुल लंबी बताई गयी हैं। यह अग्नि वर्गाकृति या आयताकार ईटों से चिने जाते थे।[२] दक्षिणाग्नि अर्धचन्द्राकार की होती है तथा इसका

Vijana Bharati

क्षेत्रफल ५७६ वर्ग अंगुल बताया गया है।[३] इसकी स्थिति दार्शिकि वेदि के दक्षिण की ओर बताई गई है।

इन तीन अग्नियों के अतिरिक्त यज्ञ में ऋत्विजों के होम हवन कार्य के लिए भी अग्नि होते थे, इन्हें धिष्णया कहा गया है। ये वृत्ताकार या वर्गाकार होते हैं। इनका घनफल एक घन अरत्नि बताया गया है।[४]

अग्नि के समान वेदि के भी ३ प्रकार बताए गए है- १- दार्शिकि २- उत्तर वेदि ३- महावेदि। दार्शिकि या यजमान वेदि की स्थिति प्राग्वंश मण्डप में बताई गई है। इस वेदि का नाप और आकार यज्ञ के प्रकार के अनुसार भिन्न-भिन्न बताए गए हैं। जैसे दर्शपूर्णमास की वेदि की प्राची ९६ अंगुल (१८२.४ से.मी.), पश्चिम की भुजा ६४ अंगुल (१२१.६ से.मी.), और पूर्व की भुजा ४८ अंगुल (९१.२ से.मी.) बताई गई है।[५] इसका स्वरूप बहुत कुछ स्त्री आकृति से मिलता जुलता है। पशुबन्ध यज्ञ की वेदि का नाप रथ के नाप जैसा होता है। इस वेदि की पूर्व भुजा रथ के अक्ष जैसी १०४ अंगुल (१९७.६ से.मी.) तथा प्राची रथ की ईषा के समान १८८ अंगुल (३५७.२ से.मी.) लंबी होती है।[६] पैतृकी वेदि वर्गाकार होती है। इसकी भुजाओं की लम्बाई १२० अंगुल बताई गई है।[७]

उत्तर वेदि वर्गाकार प्रकार की वेदि है। इसके कई प्रकार यथा शम्यावेदि, अपरिमिता वेदि, युगमात्री, दशपदा इत्यादि बताए गए हैं। अधिकांश यज्ञों में उत्तर वेदि का नाप ३२ × ३२ अंगुल बताया गया है।[८]

महावेदि के भी कई प्रकार बताए गए हैं जैसे शिखंडिनी वेदि, सौत्रामणि, मरुद् वेदि, वरुण वेदि एवं शामित्र वेदि। इन सभी के अलग-अलग नाप बताए गए हैं।[९]

विविध प्रकार के अग्नि चितियों की सूचना भी शुल्बसूत्रों में वर्णित है। श्येनचिति,[१०] अलजचिति,[११] और कंकचिति[१२] आदि पंछियों के आकार की चितियां हैं। जिसे स्वर्ग जीतने की कामना हो ऐसे सोमयज्ञ करने वाले यजमान के लिए इन्हें बनाने के निर्देश दिए गए हैं। शत्रुओं के नाश के लिए यजमान रथचक्रचिति[१३] का निर्माण करता था। यह चिति रथ के पहिए के समान वृत्ताकार का होता था। ब्रह्मलोक जीतने की इच्छा होने पर यजमान को कूर्म चिति[१४] बनाने का सुझाव दिया गया है। इसके भी दो प्रकार बताए गए है : वक्राङ्ग और वृत्ताकार। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि इस चिति की जानकारी सिर्फ बौधायन शुल्बसूत्र में ही दी गई है। अन्य शुल्बसूत्रों में उल्लेख न होने से ऐसा लगता है कि इस चिति को बनाने की प्रथा कालान्तर में नष्ट हो गई।

उपर्युक्त चितियों में श्येन चिति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सब शुल्बसूत्रों में इसके नाप बताए गए है। तदनुसार इसके आत्मा का क्षेत्रफल चार वर्ग पुरुष, एक पंख का १ १/५ वर्ग पुरुष और पूंछ का क्षेत्रफल १ १/१० वर्ग पुरुष होता है। सब मिलाकर इसका कुल क्षेत्रफल ७ १/२ वर्ग पुरुष बताया गया है। मानव शुल्बसूत्र में शीर्ष सहित श्येनचिति का वर्णन है, तदनुसार इसका कुल क्षेत्रफल ७ ३/४ वर्ग पुरुष बताया गया है।

इन चितियों के अतिरिक्त ऐसे भी चितियों का उल्लेख शुल्बसूत्रों में हुआ है, जिसके निर्माण में ईटों का प्रयोग नहीं किया जाता था, वरन् ईंटें चिनते समय जिन मन्त्रों का पाठ होता था उन्हें पढ़ा जाता था तथा ईटें चिनने का अभिनय किया जाता था। ऐसे चितियों को छंदचिति[१५] की संज्ञा दी गई।

जहाँ तक मण्डपों का प्रश्न है तो वे बांस, तट्टी या कपड़े के बनाए जाते थे। सोम यज्ञ के लिए पाँच मण्डपों की आवश्यकता होती थी- प्राग्वंश मण्डप, उदग्वंश मण्डप या सदस्, हविर्धान, आग्निध्रीय और मार्जालीय मण्डप। प्राग्वंश मण्डप[१६] यज्ञ क्षेत्र के पश्चिम की ओर होता था। इसकी पूर्व-पश्चिम लम्बाई सोलह प्रक्रम (४८० अंगुल, ९.१२ मी.) और दक्षिणोत्तर की चौडाई बारह प्रक्रम (६.८४ मी.) बताई गई है। मानव शुल्बसूत्र के अनुसार यह मण्डप वर्गाकार है और इसके भुजाओं की लम्बाई दस अरत्नि (२४० अंगुल, ४.५६ मी.) होती है। प्राग्वंश की पूर्वी सीमा महावेदि के प. भुजा से ९० अंगुल (१.७१ मी.) दूरी पर होने की बात भी कही गई है।

सदस यानी सभास्थान यह यज्ञ के ऋत्विजों का प्रमुख कार्य स्थान था। उनकी धिष्णाएँ यहाँ होती थी। यह मण्डप प्राग्वंश मण्डप के पूर्व की ओर महावेदि की पश्चिम भुजा के पास होता है। अलग-अलग शुल्बसूत्रों में इसके अलग-अलग माप बताए गए है। बोधायन के अनुसार इसकी दक्षिणोत्तर लम्बाई २७ अरत्नि (६४८ अंगुल, १२.३९ मी.) या १८ अरत्नि (४३२ अंगुल, ८.२१ मी.) और पूर्व-पश्चिम चौड़ाई १० पद (१५० अंगुल, २.८५ मी.) या १० प्रक्रम (३०० अंगुल, ५.७० मी.) होनी चाहिए।[१७]

हविर्धान मण्डप हव्यद्रव्य रखने वाली गाड़ियों के रखने के लिए बनाई जाता था। सदस के पूर्व सीमा से हविर्धान मण्डप की पश्चिम सीमा ४ प्रक्रम अर्थात् १२० अंगुल (२.२८ मी.) की दूरी पर तथा हविर्धान मण्डप की पूर्वी सीमा से उत्तरवेदि की दूरी

Vijnana Bharati

६ १/२ प्रक्रम (१९५ अंगुल, ३.७० मी.) होने की बात कही गई है। यह वर्गाकार प्रकार का मण्डप है जिनकी भुजाओं की लम्बाई ५ अरत्नि (१२० अंगुल, २.२८ मी.) बताई गई है।[१८]

इन मण्डपों के अतिरिक्त आग्निध्रीय[१९] या मार्जालीय मण्डप[२०] का उल्लेख भी शुल्बसूत्रों में हुआ है। इनकी स्थिति हविर्धान मण्डप के क्रमशः उत्तर एवं दक्षिण की तरफ बताई गई है। दोनों ही वर्गाकार प्रकार के मण्डप हैं जिनकी भुजाओं की लम्बाई पाँच अरत्नि (१२० अंगुल, २.२८ मी.) बताई गई है।

उपर्युक्त वास्तु-संरचना के अंतिरिक्त यज्ञ क्षेत्र में चात्वाल[२१] एवं उपरव[२२] नामक गड्ढे भी होते थे। चात्वाल उत्तर वेदि से कुछ दूरी पर खोदा गया गड्ढा था, जिसमें विविध प्रकार के त्याज्य पदार्थों को डाला जाता था। उपरव की स्थिति हविर्धान मण्डप के पास ही होती थी। यहाँ सोमवल्ली से सोमरस को निर्मित किया जाता था। इनके भी आकार निश्चित थे।

मण्डपादि के विन्यास के लिए रस्सी, बांस और खूंटियों का प्रयोग किया जाता था। रस्सी के सन्दर्भ में भी निर्देश दिए गए है कि यह शण, बल्बज, कुश या मुंज के घास की बने। तीन बलों से बने। लम्बाई में सर्वत्र एक जैसी मोटाई की हो। उसके दोनों सिरों पर गाँठ हो।[२३] श्येनचिति जैसे अग्निचितियों के निर्दोष विन्यास के लिए रस्सी के स्थान पर बांस के प्रयोग के निर्देश दिए गए।

शुल्बसूत्रों में अंगुल को प्रमाण इकाई माना गया है। अन्य नाप इसके अनुपात से निश्चित किये गये है। मगर अंगुल का नाप निश्चित एक ही लम्बाई का नहीं होता। बौधायन के अनुसार १४ अणु के दाने या ३४ तिल के दाने की कुल मोटाई अंगुल की लम्बाई होती है।[२४] इसके अतिरिक्त अंगुल का नाप यज्ञ के यजमान के कद की लम्बाई से भी निश्चित करते हें। जमीन पर खड़ा रहकर और हाथ सिर के ऊपर कर लेने के बाद मध्य उंगली के सिरे से जमीन तक का अंतर एक पुरुष लम्बाई का होता है। एक पुरुष १०० अंगुलों का होता है।[२५] इससे अंगुल का नाप निश्चित करते है।

मानव शुल्बसूत्र में यजमान के कद की लम्बाई किसी कारण से सामान्य पुरुष से कम होने पर अंगुल का नाप कैसे निश्चित करें? इस सवाल का जवाब दिया है। छः कमल पंरागों की कुल मोटाई बछड़ा होने वाली तीन साल की गौ के बाल की मोटाई जितनी होती है। ऐसे छः बालों की कुल मोटाई अलसी के दाने की मोटाई इतनी होती है। छः असली के दाने का एक जवस का दाना होता है। छः जवस के दानों का अंगुल होता है।[२६] अतिसूक्ष्म परिमाण से अंगुल का नाप यहाँ विकसित किया गया है।

बौधायन शुल्बसूत्र में दी हुई नापें प्रमाण मानें तो वितस्ति का नाप बौधायन और आपस्तंब शुल्बसूत्रों में उल्लिखित नहीं है। मानव और कात्यायन के अनुसार १२ अंगुलों की वितस्ति होती है।[२७]

आपस्तंब शुल्बसूत्र के कपर्दिस्वामी के भाष्य में १३ अंगुलों की वितस्ति होती है। मानव शुल्बसूत्र में १० अंगुलों का एक प्रादेश होता है ऐसा कहा गया है; किन्तु बौधायन और आपस्तंब के मतानुसार १ प्रादेश १२ अंगुलों का होता है। कात्यायन ने इसका उल्लेख नहीं किया। बौधायन शुल्बसूत्र में न दी हुयीं मगर आपस्तंब शुल्बसूत्र में उल्लेखित नापें हैं; १ अणुक = ३० अंगुल, १ उर्वस्थि = २० अंगुल, १ नाभि = ६४ अंगुल, १ आस्य = ९६ अंगुल और १ पिशिल = १२ अंगुल। केवल मानव शुल्बसूत्र में उल्लिखित नापें है; १ कृष्णल = ३ यव, १ मान = ३ कृष्णल, १ निष्क = ४ कृष्णल यह नापें शायद तील की होगी न लम्बाई की और १ अर्व = ६ अंगुल।[२८]

शुल्बसूत्र में उल्लिखित नापों से रथ के विभिन्न भागों के नाप की जानकारी भी प्राप्त होती है। सब शुल्बसूत्रों में इस विषय में एक वक्तव्य है। रथ के युग, ईषा और अक्ष की अनुक्रमशः नाप है ८६, १८८ और १०४ अंगुल। इस रथ को चारण कहते है और खराब मार्ग पर उसे इस्तेमाल किया जाता था।[२९]

शुल्बसूत्रों में दिये जानु, नाभि, आस्य, उर्वस्थि, अंगुल, पद, वितस्ति इत्यादि नापों के अनुमान है कि नापें मानव शरीर के विभिन्न अवयवों से निश्चित की गई हैं। अंगुल नाप के निश्चिती के लिए कमल पराग, गौ के बाल, अलसी के दाने इत्यादियों का उपयोग किया गया है। अनुमान है कि उस काल में महर्षि भी खेती से घनिष्ठ संबंध रखते थे।

ईंटें चिनने के भी विविध प्रकार शुल्बसूत्रों वर्णित हैं। एक प्रकार में चिति बनाते समय मध्य में मिट्टी की मात्रा ज्यादा रखते है इससे चिति मध्य में अधिक ऊँची होती है। ईंटें चिनने की इस पद्धति को समूह्य कहा गया है। दूसरे प्रकार में मध्य में मिट्टी की मात्रा कम रखते है, जिससे चिति मध्य में गहरी दिखाई देती है। ईटें बायें से दायें रखने की विधि को 'परिचाय्य' एवं दाहिने से बाएं तरफ रखने की विधि को 'उपचाय्य' कहते है।[३०]

चितियों के निर्माण में विविध तहों में ईंटों की संख्या भी शुल्बसूत्रों में वर्णित है। उल्लेखनीय है कि ईंटों की संख्या संरचना के कुल क्षेत्रफल तथा ईंटों के क्षेत्रफल के गुणाफल से निकाली जाती थी। चूंकि प्रत्येक ईटों का निर्माण मन्त्रोच्चारण के साथ

Vijnana Bharati

होता था अतः इसमें बहुत समय लगता है। फलतः ईटों की संभावित संख्या का उल्लेख यजमान की सुविधा के लिए यहाँ अपेक्षित था।

शुल्बसूत्रों में रेखागणित के अनेक नियमों को प्रतिपादित किया गया है। उन सभी का उल्लेख तो यहाँ असंभव है, परन्तु उनका एक संक्षिप्त रूप यहाँ अवश्य प्रस्तुत किया जा रहा है। जैसे वर्ग की भुजाओं की लम्बाई दुगुनी या तिगुनी करने से वर्ग का क्षेत्रफल चार गुना और नौ गुना होता है। वर्ग की भुजाओं की लम्बाई १/२ या १/३ करने से वर्ग का क्षेत्रफल १/४ और १/९ होता है।[३१] इसके माध्यम से सूत्रकार यह नियम देता है कि जिस अनुपात में वर्ग की भुजाओं की लम्बाई अधिक या कम करते है इसके अनुपात में वर्ग का क्षेत्रफल अधिक या कम होता है। बौधायन के शुल्बसूत्र में पाइथागोरस की प्रमेय एवं पाई का मान बतलाया गया है।[३२] त्रिभुज का समक्षेत्र वर्ग बनाने की रीति भी यहाँ दी गयी है।[३३] क्षेत्रफल प्राप्त करने के विविध सूत्र भी यहाँ वर्णित है जैसे वर्ग का क्षेत्रफल लम्बाई एवं चौड़ाई के गुणन से प्राप्त होता है।[३४] समकोण त्रिभुज का क्षेत्रफल आधार एवं लंब रूप भुजा के गुणन के आधा होता है।[३५] घनाकृति का घनफल उसके क्षेत्रफल और मोटाई के गुणन से प्राप्त होता है।[३६] इत्यदि।

रस्सी को इच्छानुसार समान लम्बाई के विभाग में विभक्त करने की रीति आपस्तंब शुल्बसूत्र[३७] में वर्णित है। तदनुसार प्रमाण लम्बाई के रस्सी के दोनों सिर इकट्ठे करें और रस्सी का मध्य बिन्दु निश्चित करें। रस्सी के दोनों सिर मध्य बिन्दु तक लाने पर रस्सी के चार विभाग होते हैं। इस रीति का अनेक बार उपयोग करने से रस्सी के चाहे जितने समान लंबाई के विभाग किए जा सकते है। रस्सी के समान लम्बाई के विभाग करने की सूचनाएं सब शुल्बसूत्रों में वर्णित है।

शुल्बसूत्रों में विविध भू-आकृति के विन्यास के लिए भूमिति की जितनी जानकारी आवश्यक है, वहाँ दी गई है। कुछ सिद्धान्त भी यहाँ वर्णित हैं। विन्यास के लिए भौमितिक कृतियों का उपयोजन भी यहाँ है। वे कृतियाँ जिन सिद्धान्तों के आधार पर बनीं हैं, सिर्फ उनके उल्लेख ही यहाँ किए गए हैं। इन सिद्धान्तों की सिद्धता इन सूत्रों में नहीं दी है और न ही उनसे यह अपेक्षा ही की जा सकती है। भारतीय गणित की पुस्तकों में सिद्धान्त तथा उसे समझाने के अनेक उदाहरण तो दिए जाते है, परन्तु सिद्धान्त की सिद्धता देने की परम्परा यहाँ नहीं दिखती, ऐसे में शुल्बसूत्रों के गणित विषयक ज्ञान की यही सीमा है।

शुल्बसूत्रों में चितियों के निर्माण में प्रयुक्त ईटों की भी विस्तृत जानकारी दी गई है। इटें मिट्टी से बनती थीं और इनके निर्माण में लकड़ी के साँचों का प्रयोग होता था। मिट्टी के सिवाय अन्य पदार्थों की इटें इस्तेमाल न करने के निर्देश बौधायन देते है।[३८] ईटें निर्धारित आकार की होती थीं। प्रत्येक आचार्य ने अग्नचिति के लिए ईटों को श्रेष्ठ माना गया है किन्तु चिति के आकारानुसार आयताकार, त्रिभुजाकार, चतुर्भुजाकार, पंचकोणीय आदि आकारों की भी ईटें बनाई जातीं थीं। अकेले रथचक्रचिति में १६ प्रकार के ईटों का इस्तेमाल होता था। छोटी से छोटी ईट ८ × ८ अंगलों की और बड़ी से बड़ी ईट ३६ × २४ अंगुलों की बताई गई है।

ईटों के नाप निश्चित थे। गीली मिट्टी की ईटें बनाने के बाद उन्हें सुखाया पकाया जाता था। ऐसे में ईटों की नाप पकाने पर कुछ कम हो जाती थी। इसलिए ईटें बनाने के समय इनकी नापें प्रमाण नापों से कुछ ज्यादा लेने की सूचना शुल्बसूत्रों में दी गयी है।[३९] इस बात को मानव शुल्बसूत्र में उदाहरण द्वारा समझाया गया है। तदनुसार १२ × १२ अंगुलों की ईट का क्षेत्रफल १४४ वर्ग अंगुल होता है। यह है पक्की ईट का नाप, इस नाप की पक्की ईट तैयार करने के लिए गीली मिट्टी की १५० वर्ग अंगुल की ईट बनाने की सूचना दी गई है।[४०]

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि शुल्बसूत्रों में ईटों को बनाने की मिट्टी तैयार करने की विधि के सन्दर्भ में कुछ भी नहीं कहा गया है। हर क्षेत्र की मिट्टी अलग-अलग प्रकार की होती है। अतः मिट्टी के सूखने पर उनमें संकुचन का परिमाप भी भिन्न-भिन्न होगा। ऐसे में यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि ईटों के लिए मिट्टी तैयार करते समय उस में गोंद या भूसी जैसे पदार्थों को मिलाया जाता रहा होगा ताकि मिट्टी में संकुचन सीमित मात्रा में हो।

चिति के निर्माण में फूटी, जीर्ण, ज्यादा पकने से काली हो गई, चटकी हुई और जिन पर लकड़ी, पत्थर, जानवरों के पांव आदि के धब्बे पड़े हों, ऐसी ईटों के इस्तेमाल न करने के निर्देश दिए गए है।[४१]

ईटें चिनने की पद्धति भी शुल्बसूत्रों में दी गई है। इस सन्दर्भ में बौधायन द्वारा प्रदत्त नियम इतना महत्वपूर्ण है कि आज भी मकान या वास्तु संरचना को मजबूती प्रदान करने के लिए उसका पालन किया जाता है। तदनुसार ईटों की संधियाँ एक दूसरी के ऊपर न आनी चाहिए यान जोड़े काट कर ईटों को चिनना

Vijnana Bharati

चाहिए।[४२] अग्निचिति के लिए ईटों के स्थान निश्चित थे और उसी के अनुरूप उन पर चिन्ह भी लगाए जाते थे। ईटें चिनते समय प्राची (पूर्व-पश्चिम जाने वाली रेखा) अग्नि चिति की सममिति अक्ष होती थी। इसके उत्तर भाग में जितनी संख्या में ईटें चिनीं जातीं थीं उतनी ही संख्या की ईटें दक्षिण भाग में भी चिनने के निर्देश दिए गए हैं।[४३]

चिति निर्माण के समय उसके क्षेत्रफल तथा ईटों की चिनाई सम्बन्धी शुल्बसूत्रों के नियमों का पालन होता था जिसकी पुष्टि कौशाम्बी के उत्खनन से प्राप्त श्येनचिति के अवशेष से होता है।[४४]

शुल्बसूत्रों में वर्णित विविध विषयों की संक्षिप्त जानकारी इस आलेख में प्रस्तुत की गयी है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि यह साहित्य वास्तुशास्त्र एवं रेखागणितीय अध्ययन की दृष्टि से अनुपम कृति है। संस्कृत भाषा, सूत्ररूप तथा भूमिति जैसे क्लिष्ट विषय के होने से शुल्बसूत्रों का अध्ययन लंबे समय तक उपेक्षित रहा। परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में भूमिति शास्त्र की महत्ता बढ गई है, फलत: भारतीय गणित के इतिहास के अध्येताओं के लिए शुल्बसूत्र के अध्ययन की अनिवार्यता स्वत: ही सिद्ध होती है।

सन्दर्भ :

१. बौधायन शुल्बसूत्र १.६३, १.६१-७२; मानव शुल्बसूत्र १०.२.२.१, १०.३.४.६-१३।

२. बौधायन शुल्बसूत्र १.६४

३. मानव शुल्बसूत्र १०.१.१.७-८

४. बौधायन शुल्बसूत्र १.६७, १.६९

५. बौधायन शुल्बसूत्र १.१०२.२.७३-७७; मानव शुल्बसूत्र १०.२.२.१०, १०.२.५.५, १०.३.१.६, १०.३.४.२३-२६, आपस्तम्ब शुल्बसूत्र ७.१८-२२

६. बौधायन शुल्बसूत्र १.७७

७. बौधायन शुल्बसूत्र १.७६; आपस्तम्ब शुल्बसूत्र ६.७-८, मानव शुल्बसूत्र १०.१.२

८. आपस्तम्ब शुल्बसूत्र ६.१९, मानव शुल्बसूत्र १०.१.२.६

९. बौधायन शुल्बसूत्र १.७९, १.९७-९८; मानव शुल्बसूत्र १०.१.३५; आपस्तम्ब शुल्बसूत्र ६.२०-२४

१०. बौधायन शुल्बसूत्र १.८५; मानव शुल्बसूत्र १०.१.३.९, १०.१.२.५, १०.३.१.९

११. बौधायन शुल्बसूत्र ३.१-६१, ४.१-७४; मानव शुल्बसूत्र १०.२.१.१-१४, १०.२.१.२-८, १०.२.२.११-१३, १०.३.४.१४-२२, १०.३.५.१, १०.३.५.७-२६; आपस्तम्ब शुल्बसूत्र ८.१-८, ८.१०-२१, ९.१-२०, १५.१-२५, १६.१-२४ इत्यादि।

१२. बौधायन शुल्बसूत्र ४.९२-९९; मानव शुल्बसूत्र १०.३.२.१२; आपस्तम्ब शुल्बसूत्र २१.१-८

१३. बौधायन शुल्बसूत्र ४.७५-९२; मानव शुल्बसूत्र १०.३.५.२-६; आपस्तम्ब शुल्बसूत्र २१.१, १०

१४. बौधायन शुल्बसूत्र ५.१-८; आपस्तम्ब शुल्बसूत्र १२.१६-१७

१५. बौधायन शुल्बसूत्र ९.१-३३, १०.१-१२

१६. आपस्तम्ब शुल्बसूत्र १४.१६-१८

१७. बौधायन शुल्बसूत्र १.८८; मानव शुल्बसूत्र १०.१.३.१

१८. बौधायन शुल्बसूत्र १.९५

१९. बौधायन शुल्बसूत्र १.९६; मानव शुल्बसूत्र १०.१.३.२

२०. बौधायन शुल्बसूत्र १.१०३

२१. बौधायन शुल्बसूत्र १.१०४-१०५

२२. बौधायन शुल्बसूत्र १.९९; मानव शुल्बसूत्र १०.३.१.८

२३. बौधायन शुल्बसूत्र १.१००-१०१; मानव शुल्बसूत्र १०.३.२.२८; आपस्तम्ब शुल्बसूत्र ७.४-५

२४. मानव शुल्बसूत्र १०.१.१

२५. बौधायन शुल्बसूत्र १.४

२६. मानव शुल्बसूत्र १०.१.४.५

२७. डॉ रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी, चार शुल्बसूत्र, उज्जैन, २०००, पृ० XXV-XXVI.

२८. डॉ रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी, चार शुल्बसूत्र, उज्जैन, २०००, पृ० XXVI.

२९. डॉ रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी, चार शुल्बसूत्र, उज्जैन, २०००, पृ० XVI-XVII..

३०. कात्यायन शुल्बसूत्र ३.५-९

३१. कात्यायन शुल्बसूत्र ३.५-९

३२. बौधायन शुल्बसूत्र १.४६-५०

३३. कात्यायन शुल्बसूत्र ४.७-१०

३४. मानव शुल्बसूत्र १०.२.५.५, १०.३.२.११

३५. मानव शुल्बसूत्र १०.३.२.१२

३६. मानव शुल्बसूत्र १०.३.१.६

३७. आपस्तम्ब शुल्बसूत्र १.१३

३८. बौधायन शुल्बसूत्र २.३९

३९. बौधायन शुल्बसूत्र २.६०; मानव शुल्बसूत्र १०.२.५.१

४०. मानव शुल्बसूत्र १०.२.५.३

४१. बौधायन शुल्बसूत्र २.५२-६०

४२. बौधायन शुल्बसूत्र २.२२

४३. बौधायन शुल्बसूत्र २.२९; २.३५

४४. जी.आर. शर्मा, दी एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी, इलाहाबाद, १९६०, पृ० ८७-१२६

Vijnana Bharati